वास्तुशास्त्रीय चिन्तन परम्परा – प्रासाद चिन्तन

(वास्तुविन्यास व मन्दिर वास्तु)

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा

वैदिक वाङ्मय भारतीय ज्ञान विज्ञान व समस्त कार्य व्यवहार का मूल है। वैदिक वाङ्मय में सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद को माना गया है। इस वेद में सभी देवताओं का स्तवन व स्तवनादि से जुड़े मंत्रों का समावेश है। अनेकों स्थानों पर ऋग्वेद में 'वास्तोष्पति' नामक देवता का उल्लेख प्राप्त है और प्राय: गृहनिर्माण या गृहप्रवेश या इसी प्रकार के गृह से सम्बन्धित किसी भी कर्म के आरम्भ में इन वास्तोष्पति देवता के पूजन व यजन का वर्णन प्राप्त होता है सामान्य रूप से जिज्ञासा होती है कि इनकी उत्पत्ति व स्वरूप क्या है? इन्हीं 'वास्तोष्पति' देवता को 'वास्तुपुरुष' के नाम से भी जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति विषयक जिज्ञासा के समाधान हेतु भी शास्त्रों में अनेक वर्णन प्राप्त होते है वास्तुविषयक ग्रन्थों में कई गाथाऐं किञ्चित अन्तर के साथ लिपिबद्ध है यथा विश्वकर्माप्रकाश में लिखा है कि त्रेतायुग के प्रारम्भ के उपरान्त एक विराट आकार का महाभूत उत्पन्न हुआ जिसने जल्दी ही ब्रह्माण्ड को आच्छादित किया और तब ब्रह्माजी के आदेश से देवताओं ने उसे अधोमुख कर उस पर अधिकार कर लिया, यथा वर्णित है–

पुरा त्रेतायुगे ह्यासीनमहाभूतं व्यवस्थितम्।
स्वप्यमानं शरीरेण, सकलं भुवनं तल:।
तं दृष्ट्वा विस्मयं देवा, गता: सेन्द्रा: भयावृता:।
ततस्ते भयमापन्ना, ब्रह्माणं शरणं ययु:।।
भूतभावन भूतेश महद्भयमुपस्थितम्।
क्व यास्याम: क्वगच्छामो वयं लोकपितामहा।।
मा कुर्वन्तु भयं देवा, विगृह्योत्तमहाबलम्।
निपात्याधोमुखं भूमौ, निर्विशंका भविष्यथ।।
ततस्तै: क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तं महाबलम्।
विनिक्षिप्तमधो वक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुरा:।।

(विश्वकर्मा प्रकाश)

वास्तुशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में मतान्तर भी प्राप्त होता है। मण्डन सूत्रधार ने स्वरचित ''वास्तुराज वल्लभ'' में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति रुद्र व अन्धकासुर के मध्य युद्ध में भगवान पिनाकपाणि त्रिनेत्र के

स्वेदकणों से मानी है। इसी प्रकार महेश के स्वेद कणों से वास्तोष्पति की उत्पत्ति पुराणों में मत्स्यपुराण (अध्याय 252), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (अध्याय 3/95) व अग्निपुराण में (अध्याय 40/01) वर्णित है। वास्तुराजवल्लभ में मण्डनसूत्रधार के वचन निम्नानुसार है–

संग्रामेऽन्धकरुद्रयोश्च पतितः स्वेदो महेशात् क्षितौ
तस्मात् भूतमभूच्च भीति जननं द्यावा पृथिव्योर्महत्।
तं देवैः सहसा विग्रह्य निहतं भूमावधोवक्त्रकं
देवानां वचनाच्च वास्तुपुरुषस्तेनैव पूज्यो बुधैः।।

(वास्तुराजवल्लभ)

भारतीय वाङ्मय में ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन है और इसमें वास्तु, स्थापत्य व शिल्प सम्बन्धी कई उल्लेख मिलते हैं वास्तुपूजन के अवसर पर वास्तुपुरुष देवता के आह्वान के विषय में प्राप्त विवरण इस मंत्र के रूप में मिलता है–

वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मानत्स्वावेशो अनमीवो भवानः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शंतो भव द्विपदेशं चतुष्पदे।। (ऋग्वेदमण्डल 7)

अर्थात् हे वास्तुदेवता, हम आपके पूर्ण निष्ठित उपासक है इसे आप सत्य जाने एवं हमारे द्वारा की गई स्तुतियों, प्रार्थनाओं को सुनकर हमें रोगमुक्त व प्रसन्न करें, तथा धन ऐश्वर्य से युक्त करें, साथ ही इस वास्तु में निवासित परिवारजनों व पशुओं का भी कल्याण व वृद्धि करें। संस्कृत वाङ्मय में वास्तुदेव को निर्माणस्थल का अधिष्ठाता माना जाता है। गृह का पालक व रक्षक भी स्वीकार किया है–

वास्तो गृहक्षेत्रस्य परिधिष्ठाता।
वास्तोष्पति गृहस्य पालयितृ देव।। (ऋ ग्वेद 7/54/41)

वैसे शास्त्रों में वास्तुपुरुष निर्माणस्थल के अधिष्ठाता के रूप में स्वीकृत होने से प्रत्येक शिल्पकार्य आरम्भ में वास्तुपूजन अनिवार्य है फिर भी जिन-जिन कर्मो के प्रारम्भ में अवश्य ही करणीय कर्म के रूप में वास्तुपूजन अनिवार्य है उनका भी नामोल्लेख शास्त्रों में वर्णित है और उन-उन कर्मो के प्रारम्भ में वास्तुपूजन करना ही चाहिये ऐसा नहीं करने पर हानि होती है विश्वकर्मा प्रकाश में उद्धृत है–

प्रासादे च प्रपायां च, जलोद्याने तथैवच।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो, मोहाद्वास्तु नरः प्रभो।।
अश्रियं मृत्युमाप्नोति, विघ्नस्तस्य पदे पदे।
वास्तुपूजामकुर्वाणो तवाहारो भविष्यति।।

इसी प्रकार का संकेत वास्तुराजवल्लभ नामक प्रसिद्ध वास्तुग्रन्थ में भी है कि यदि किसी व्यक्ति

द्वारा (आधुनिक समय में सामूहिक निर्माण में भी), देवालय निर्माण, भवन या प्रासाद निर्माण, तालाब व कूपादि खननारम्भ, उद्यान, बाग, बगीचारोपण अवसर, प्राचीन भवन के पुनः जीर्णोद्धार में, नगर व ग्रामादि बसाते समय प्रारम्भ में, यज्ञ के प्रारम्भ व समापन अवसर पर वास्तुपूजन अत्यन्त सावधानी व श्रद्धा के साथ करना चाहिये।

प्रसङ्गवश वास्तुपूजन देवालय में भी विहित है अतः यहाँ यह तथ्य भी सुविदित होता है कि देवालय निर्माणावसर पर वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा समय-समय पर स्वस्ति वाचन व पुण्यक आशीर्वाद ग्रहण भी करना चाहिये। भूमि के निर्माण के समय खनन, ताडन, घर्षणादि दोष शमन हेतु उक्त कार्य आवश्यक है क्योंकि सनातनी परम्परा में पञ्चमहाभूतों में से एक पृथ्वी है इसीलिए कहा भी जाता है कि–

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

इसी अवधारणा के साथ शास्त्रों में निर्माणावसर के वे स्थल या पडाव जहाँ पर वास्तुदेव का पुण्यस्मरण अभीष्ट है वर्णित है वे इस प्रकार है प्रासाद मण्डन में इनको 'सप्तपुण्याहकर्म' की संज्ञा दी गई है और लिखा है–

कूर्मसंस्थापने द्वारे, पद्माख्यायां तु पौरुषे।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठायां, एवं पुण्याहसप्तकम्।।

अर्थात् कूर्मसंस्थापन, द्वारस्थापन, पद्मानामकशिलास्थापना, प्रासादपुरुष की स्थापना व घट (कलशस्थापना), ध्वजस्थापन व मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा आदि कर्मावसरों को पुण्यप्रद कर्म मानना चाहिये। इसी प्रकार अन्यवास्तु ग्रन्थों में भी उल्लेखित है जो इस प्रकार से है–

कूर्मशिला तथाद्वारं, पद्मकं पुरुषः क्रमात्।
कलशोध्वजः प्रतिष्ठां च सप्तपुण्याहकानिच।।

इसी प्रकार का वर्णन वास्तुशास्त्रीय अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है जो इस प्रकार वर्णित है वास्तुमञ्जरी के प्रणेता आचार्य ने उद्धृत किया है–

कूर्मसंस्थापने द्वारे, पद्माख्यायां तु पौरुषे।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठायां, एवं पुण्याहसप्तकम्।।

भारतीय कालगणना में मुख्य आधार सूर्य व चन्द्र है इनकी गति के आधार पर विभिन्न कालमान आश्रित है मुख्य रूप से कालमान नव प्रकार के माने गये है इनमें दैवमान भी प्रचलित रहा है व्यावहारिक प्रयोग सौर, सावन, नाक्षत्र व चान्द्र इन चार ही कालमानों का उपयोग है किन्तु सैद्धान्तिक रूप में नव प्रकार वाले सभी कालमानों का समावेश है दिन में कार्य व्यापार का संचालन व सम्पादन अधिक सुगमता से होता है। अतः देवताओं की प्रतिष्ठा (मन्दिरनिर्माणादि कार्य) सौम्यायन यानि देवताओं के दिन में सिद्धिप्रद मानी गई है यहाँ वास्तुशास्त्रीय प्रमाण भी है–

पूर्वोक्ता सप्तपुण्याहप्रतिष्ठासर्वसिद्धिदा।
रवौ सौम्यायने कुर्याद् देवानां स्थापनादिकम्।।

देवमूर्तियों की स्थापना हेतु देव मन्दिर का निर्माण भी अपेक्षित है। अत: देवालय निर्माण हेतु शास्त्र निर्दिष्ट तत्त्वों का निदर्शन व उनके द्वारा निर्देशित नियमों से आबद्ध यदि देवप्रासाद होता है तो वह अभीष्टफलदायी होता है प्रारम्भ में तो मन्दिर वास्तु भी साधारण ही रहा होगा किन्तु समय पाकर कलात्मकता की अभिवृद्धि के कारण इनका स्वरूप भी परिष्कृत व संवर्धित होता गया होगा।

ऋग्वेद के उपरान्त अग्निपुराण का एक सम्पूर्ण अध्याय ही मन्दिर वास्तु का सम्यक् निर्देशक रूप में लिखित है। शास्त्रों में एकतलीय मन्दिर के साथ-साथ विभिन्न शालीय मन्दिरों का भी वर्णन प्राप्त होता है। एकमंजिला मन्दिर भवन दस हस्त विस्तार व इससे द्विगुणित ऊंचाई तक वाले हो सकते हैं वर्गीकरण द्वारा इनको चार अलग-अलग नामों से जाना जाता है–

(1) शान्तिक देवप्रासाद
(2) पौष्टिक देवप्रासाद
(3) जयददेवप्रासाद
(4) अद्भुतदेवप्रासाद

यथोक्तम्–

त्रिचतुर्हस्तमारभ्य, नवदशहस्तविस्तृतम्।
तारे सम्पदशोत्सेघमध्यर्ध तत्त्रिपादकम्।।
द्विगुणं तु तदुत्सेधं, शान्तिकं पौष्टिकं भवेत्।
जयदं चाद्भुतं चैव, चतुर्धोदयमीरितम्।। (मयमतम्)

आकृति (मन्दिरों की) के अनुसार भी इनका स्वरूप चौकोर (समरस्त्र), वर्गाकार या आयताकार, अण्डाकार, षटकोणीय या अष्टकोणीय रूप में भी निर्मित किया जा सकता है मयमत में इसके लिये उल्लेख है–

चतुरं वृत्तमायामं, द्व्यधवृत्तं षडमंकम्।
अष्टाश्रमाकृतिह्येषां, शिखरेऽपि तथैव च।। (मयमतम्)

देवालयों में प्रतिष्ठित किये जाने वाली मूर्तियों में देवता जिस प्रकार से पुरुष व स्त्री संज्ञा से है वैसे ही देवालयों की भी पुरुष व स्त्री संज्ञा उनके निर्मित आकार के अनुसार वर्णित है और शास्त्रों में यह निर्णय भी मिलता है कि स्त्रीदेव की प्रतिष्ठा स्त्रीसंज्ञक भवनों में व पुरुष देवताओं की प्रतिष्ठा पुरुषसंज्ञक भवनों (देवालयों) में ही होनी चाहिये।

वास्तुशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थमानसार में उक्त वर्णन इस प्रकार प्राप्त है–

समाश्रं समवृत्तं, यत्पुरुषं चेतीकथ्यते।
आयताकारधिष्ण्यं वा वनितेती प्रकीर्तितम्।।
पुंविमानं पुरुषं वनितायां वनितां क्षिपेत्।
शक्तिनां वनितां वापि, पुरु वासि च कल्पयेत्।। (मानसार)

यानि समकोणीय या वृत्ताकार भवन पुल्लिंग भवन माने जाते हैं वैसे ही आयताकार भवनों को स्त्रीलिंगवाची भवन मानकर उनमें तदनुरूप (लिङ्गसाधर्म्यानुसार) देवतामूर्तियों को प्रतिष्ठित करना चाहिये। विस्तार होने पर भारतीय मन्दिरों की वास्तुकला दो भागों में विभक्त हुई जिसे इनके प्रचलन स्थान के अनुसार उत्तरभारतीय वास्तुकला व दक्षिण भारतीय स्थापत्य कला के नाम से जानने लगे। उत्तरभारतीय स्थापत्य कला को नागरविधा व दक्षिणभारतीय वास्तुकला को द्राविडविधा के नाम से भी जाना जाता है। दोनों विधाओं का समन्वित स्वरूप 'बेसर शैली' के रूप में भी प्रकाश में आया। नागर विधा के प्रस्तारक आचार्य गर्ग, अत्रि, पराशर, वशिष्ठ व विश्वकर्मा माने गयें वही द्राविडविधा के प्रमुख प्रवर्तकों में ब्रह्मा, मय, त्वष्ट्रा, कश्यपादि माने जाने लगें।

मन्दिर निर्माण हेतु समाज को प्रेरणा हेतु शास्त्रों में लिखा है कि मन्दिर की भूमि पवित्र, शान्त व मनोरम वातावरण से युक्त हों, जहाँ मन्दिर का निर्माण करना हो वहाँ नजदीक ही जलाशय, तालाब व सुन्दर व सुगन्धित पुष्पों से सज्जित उद्यान व वाटिका होनी चाहिये।

सलिलोद्यानयुक्तेषु, कृते एवकृतकेषु च।
स्थानेष्वेतेषु सांनिध्युपगच्छन्ति देवताः।।

मन्दिरनिर्माण के द्वारा निर्माता (बनवाने वाले) को पुण्यलाभ होता है। मन्दिर निर्माण की सामग्री (मिट्टी, लकडी, पत्थर, लौह, चाँदी व स्वर्ण निर्मित) के अनुसार निर्माणकार को प्राप्त पुण्य में गुणितवृद्धि होती जाती है। विश्वकर्मा प्रकाश में इसका उल्लेख इस प्रकार है–

प्रासादे मृण्मये पुण्यं, मयैतत्काथितं पुरा।
तस्माद्दशगुणं पुण्यं, कृते शैलमये भवेत्।
ततो दशगुणं लोहे, ताम्रेशतगुणं ततः।
सहस्त्रगुणितं रौप्ये, तस्माद्रौक्मे सहस्त्रभम्।।
अनन्तं फलमाप्नोति, रत्नचित्रे मनोहरे।
या भूमिः शस्यते गेहे, सा प्रासाद विधौ तथा।।

गृहवास्तु व मन्दिरवास्तु में वास्तुपूजा में पद विन्यास क्रम का ही अन्तर है वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में वास्तु के प्रमाण से विभिन्न मन्दिरों का वर्णन किया गया है विश्वकर्मा प्रकाश में ही 20 प्रकार के मन्दिर है–

मेरु: मन्दर: कैलाश:, विमानच्छदनन्दना:।
समुद्ग पद्म गरुड़, नन्दिवर्धन कुञ्जरा:।
गृहराजो वृषो हंस:, सर्वतोभद्रकोघट:।
सिंहो वृत्तश्चतुष्कोण: षोडशाष्टश्रितौतथा।।
इत्येते विंशति: प्रोक्ता:, प्रासादा संज्ञया मता।
यथोक्ता.....।।

अर्थात्–

मेरु, मन्दर, कैलाश, विमानच्छद, नन्दन, समुद्ग, पद्म, गरुड, नन्दिवर्धन, कुञ्जर, गृहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि, अष्टाश्रि इस प्रकार 20 प्रकार के मन्दिर प्रासाद माने गये हैं। इसी प्रकार का वर्णन 14वीं शताब्दी के प्राकृत भाषाविद् 'ठक्कुर फेरु' ने भी अपने ग्रन्थ में (वास्तुसार नाम से प्रसिद्ध) लिखा है उनके अनुसार मन्दिरों का वर्गीकरण करने पर 25 प्रकार होते हैं जो इस प्रकार है–

केसरिअ सव्वभद्दो सुनंदणो नन्दिसालु नंदीसो।
तह मंदिरु सिखिच्छो अमिअब्भवु हेमवन्तो अ।।
हिमकूडू कइलासो पहविजयो इन्दनीलु महनीलो।
भूधरु अ रतनकूडो वइडुज्जो पडमरागो अ।।
वज्जंगो मुउडुज्जलु अइरावउ, रायहंसो गरुडो अ।
वसहो अ तह य मेरु ए ए पणवीस पासाया।। (ठक्कुर फेरु)

प्राकृत भाषा में निबद्ध वास्तुसार ग्रन्थ में 'ठक्कुर फेरु' ने प्रासादों के 25 वर्गीकरण कर उपर्युक्तानुसार नाम दिये हैं। प्रासादों में उनके आकार के अनुसार ही पीठ का उदय होता है। गर्भगृह में मूर्तियों की प्रतिष्ठा की जाती है। मन्दिर शैली के अनुसार शिखरों का निर्माण होता है। इस प्रकार वास्तुशास्त्रीय चिन्तनपरम्परा में वास्तु विन्यास व मन्दिरवास्तु का उल्लेख वर्णित है।

सन्दर्भग्रन्थावली–

1.	विश्वकर्माप्रकाश	2.	मत्स्यपुराण
3.	विष्णुधर्मोत्तरपुराण	4.	अग्निपुराण
5.	वास्तुराजवल्लभ	6.	ऋग्वेद
7.	प्रासादमण्डनम्	8.	अपराजितपृच्छा
9.	वास्तुमंजरी	10.	मयमतम्
11.	मानसार	12.	वास्तुसार